SAHMAT

प्रभात पटनायक

भारत में क्रांति और प्रति-क्रांति

भारत में क्रांति और प्रति- क्रांति

प्रभात पटनायक

प्रकाशक: नॉटनल

प्रकाशन: अगस्त, 2025

अनुक्रम

भूमिका

प्रभात पटनायकः मेहनतकश जनता के आवयविक बुद्धिजीवी 4

राजेंद्र शर्मा

यह समय

भारत में क्रांति और प्रतिक्रांति 16

"विश्वीकरण" का दौर और राष्ट्रवाद की दो अवधारणाएं 33

भारत की जनवादी क्रांति की दशा 45

नवउदारवादी पूंजीवाद और भारत का राष्ट्रीयत्व 55

नेहरूवादी आर्थिक रणनीति की शक्तियां और सीमाएं 65

अर्थव्यवस्थाः स्वतंत्रता के सात दशक बाद 76

समकालीन पूंजीवाद में विचारधारात्मक संघर्ष 88

उच्च शिक्षा पर हमला 95

नजरिया

मार्क्स और पूंजीवाद 107

साम्राज्यवाद और कार्ल मार्क्स 119

अक्टूबर क्रांति का सैद्धांतिक महत्व 126

मार्क्सवाद और जाति का प्रश्न 134

नवउदारवादी पूंजीवाद का तर्क 143

नवउदारवादी पूंजीवाद और उसका संकट 156

बहुराष्ट्रीय निगम और तीसरी दुनिया के देश 167

'विकास' का पूंजीवादी विमर्श 174

मोर्चे

कार्पोरेट-सांप्रदायिक गठजोड़ को संभालने की कसरतें 183

नवउदारवादी "विकास" का अर्थ क्या है ? 193

नोटबंदी और तानाशाही का द्वंद्ववाद 202

लोकरंजनवाद की अलग-अलग संकल्पनाएं 211

ग्रामीण भारत की दयनीय दशा 218

ऊंची विकास दर और बढ़ती भूख 227

बढ़ती आय असमानता 236

दलित और कुपोषण 243

गरीबी पर नरेंद्र मोदी के विचार 252

शासन पर अति-निर्भरता से 'मुक्ति' दिलाने का खेल 260

'मेक इन इंडिया' : एक खतरनाक नारा 269

योजना आयोग का खात्मा 277

नोटबंदी की असलियत 293

जीएसटी की वर्गीय अंतर्वस्तु 298

ट्रम्प बनाम बाकी सब 306

बुद्धिजीवी और राजनीतिक सत्ता 314

बुद्धिजीवियों को बदनाम करने का खेल 322

मजदूर और किसान 330

राज्य और वामपंथ 338

भूमिका

प्रभात पटनायकः मेहनतकश जनता के आवयविक बुद्धिजीवी

इसी संकलन के एक लेख में (‘उच्च शिक्षा पर हमला’) प्रभात पटनायक ने इसकी ओर इशारा किया है कि किस तरह गांधी, औपनिवेशिक गुलामी से आजादी की लड़ाई के जरूरी हिस्से के तौर पर, विदेशी राज के लिए नौकर पैदा करने वाली औपनिवेशिक शिक्षा के विपरीत, भारतीय जनता के हितों से जुड़ी शिक्षा और उस शिक्षा के प्रतिफल के रूप में, जनता के हितों से जुड़े बुद्धिजीवियों की कल्पना करते थे। इस संदर्भ में ग्राम्शी की शब्दावली का सहारा लेकर प्रभात रेखांकित करते हैं कि गांधी की यह कल्पना वास्तव में ‘भारतीय जनता के आवयविक बुद्धिजीवियों' कल्पना थी। खुद प्रोफेसर पटनायक को परिभाषित करने के लिए, इससे बेहतर परिकल्पना नहीं सकती है। वह गांधी की उसी कल्पना के अनुरूप भारतीय जनता के और वास्तव उससे भी एक कदम आगे, उस मेहनतकश जनता के आवयविक बुद्धिजीवी हैं, जो समग्रता में भारतीय जनता के बेहतरीन हितों का प्रतिनिधित्व करती है।

यह संयोग ही नहीं है कि प्रभात पटनायक, मेहनतकश जनता के सामने मौजूद आज के हालात, उसकी चुनौतियों और संघर्षों को, हमेशा उनके इतिहास के बीच रखकर देखते हैं, जिसके लिए औपनिवेशिक शासन से मुक्ति की लड़ाई की परंपरा, शायद सबसे

महत्वपूर्ण प्रस्थान बिंदु है। बेशक, उनके अध्ययन/अध्यापन का मूल अनुशासन अर्थशास्त्र है। लेकिन, खुद अर्थशास्त्र की उनकी परिकल्पना परंपरावादी नहीं मार्क्सवादी है, जहां आर्थिक संरचनाओं की अमूर्त कल्पनाओं तक सीमित रहने के बजाए, अर्थशास्त्र मूर्त रूप से आर्थिक संरचनाओं से संबोधित होता है और राजनीतिक - अर्थशास्त्र के रूप में ही सामने आता है, जो संबंधित आर्थिक संरचनाओं को उनके विकास के इतिहास में रखकर देखता है। यहां आकर अर्थशास्त्र, एक अलग-थलग अनुशासन न रहकर, मार्क्सवादियों की बेहतरीन परंपरा में, अपनी समग्रता में यथार्थ का अध्ययन बन जाता है। लेकिन, यह समग्रता भी कोई अचल समग्रता नहीं है बल्कि यथार्थ को उसकी गति में पकड़ने वाली समग्रता है। यथार्थ को उसकी गति में पकड़ना और उसमें मेहनतकशों के हिस्से के तौर पर हस्तक्षेप करना तथा यथार्थ को उनकी मनोवांछित दिशा में बदलने का प्रयास करना, यही तो मेहनतकश जनता के आवयविक बुद्धिजीवी की भूमिका है।

प्रभात पटनायक और उनके लेखन से अपने चार दशक से ज्यादा के परिचय के बावजूद, उनके योगदान का कोई मोटा सा खाका भी पेश करने की न तो इन पंक्तियों के लेखक की सामर्थ्य है और न नीयत। यह लेखक तो सिर्फ अपने जाने हुए की ही बात कर सकता है और उसके भी सिर्फ एक किस्से की। यह किस्सा लगभग साढ़े तीन दशक से एक खिड़की भर से उनके बौद्धिक अमल को देखने, समझने और इस क्रम में देखने वाले के खुद समृद्ध होने का है। यह खिड़की, सी पी आइ (एम) के साप्ताहिक मुखपत्र, लोकलहर में प्रभात पटनायक के इन दशकों में कमोबेश लगातार जारी रहे स्तंभ की है और देखने वाला, इस

स्तंभ का उतने ही नियमित रूप से अनुवाद करता रहा है। आर्थिक पहलुओं से ही शुरू होकर इस स्तंभ का दायरा उत्तरोत्तर वर्तमान के विभिन्न पहलुओं, विशेष रूप से सामाजिक, शैक्षणिक/वैचारिक आदि, इतिहास तक फैलता गया है और वैसे-वैसे इस खिड़की से दिखाई देने वाली असाधारण रूप से सर्जनात्मक बौद्धिक उद्यम की तस्वीर मुकम्मल होती गयी है।

इस तस्वीर में प्रभात पटनायक, विशेष रूप से नवउदारवाद के वर्तमान दौर के सबसे प्रखर और मुकम्मल आलोचक नजर आते हैं। बेशक, पूंजीवाद के मौजूदा दौर की नवउदारवाद के दौर के रूप में पहचान पर तो प्रायः सभी वामपंथी एक राय हैं। किंतु इस नवउदारवादी व्यवस्था को संचालित करने वाली केंद्रीय विशेषता क्या है, इस पर वैसी सहमति तथा स्पष्टता नजर नहीं आती है। भारत में विशेष रूप से नब्बे के दशक के आरंभ से, नवउदारवादी व्यवस्था शुरू होने के समय से ही प्रभात पटनायक बहुत ही प्रखरता से इसकी पहचान कराते रहे हैं कि यह व्यवस्था, औद्योगिक पूंजी से भिन्न, वैश्विक वित्तीय पूंजी के वर्चस्व से संचालित व्यवस्था है। स्थानीय इजारेदार तथा वित्तीय हित, वैश्विक वित्तीय पूंजी के साथ जुड़ जाते हैं। इस व्यवस्था की पहचान, सिर्फ वैश्विक वित्तीय पूंजी के लिए देशों के सीमाओं के आर-पार मुक्त आवाजाही सुनिश्चित करने से ही नहीं होती है, इस तरह खोली गयीं तीसरी दुनिया की अर्थव्यवस्थाओं पर ऐसी नीतियां थोपे जाने से भी होती है, जो शासन को आर्थिक गतिविधियां बढ़ाने वाले तथा जनता के हाथों में क्रय शक्ति बढ़ाने वाले हस्तक्षेप करने से पीछे धकेलती हैं और उद्योग ही नहीं बल्कि शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन

आदि, सभी सेवाएं निजी क्षेत्र की लूट के लिए खोले जाने के रास्ते पर भी धकेलती हैं। और यह सब किया जाता है, तीसरी दुनिया की अर्थव्यवस्थाओं को विदेशी वित्तीय प्रवाहों पर निर्भर बनाने और फिर इस निर्भरता को हथियार बनकर, वित्तीय पूंजी के हित की नीतियों का ही लागू किया जाना सुनिश्चित करने के जरिए।

बहरहाल, प्रभात पटनायक इन नीतियों की प्रकृति की आम पहचान पर ही नहीं रुक जाते हैं। वह इनके दबाव में और नवउदारवादी व्यवस्था के ऑपरेशन के अभिन्न हिस्से के तौर पर चल रही गहराई तक विध्वंसक प्रक्रियाओं की, असाधारण स्पष्टता तथा चिंता के साथ पहचान कराते हैं। इन विध्वंसक प्रक्रियाओं का सार है, नवउदारवादी विकास प्रक्रिया के हिस्से के तौर पर, बढ़ते पैमाने पर लघु उत्पादकों की तबाही। किसानी खेती का गहराता संकट, दस्तकारों की तबाही, मछुआरों आदि की बर्बादी और छोटे कारोबारियों की तबाही, इन्हीं विध्वंसक प्रक्रियाओं का नतीजा है। इस तबाही के दो प्रमुख हथियार हैं। पहला, आजादी की लड़ाई की परंपरा के हिस्से के तौर पर, आजादी के बाद अपनायी गयी लघु उत्पादकों की सहायता करने वाली नीतियों, जैसे खेती में तथा सिंचाई में बड़े पैमाने पर सार्वजनिक निवेश, सस्ते ऋण, बीज, खाद आदि, लागत सामग्री के लिए सब्सीडी, उचित न्यूनतम समर्थन मूल्य पर पैदावार की खरीद आदि से, ज्यादा से ज्यादा हाथ खींचा जाना। इसने भारत में खेती को ही अलाभकर बना दिया है और किसानी खेती का वह गहरा संकट पैदा किया है, उसकी चरम अभिव्यक्ति पिछले करीब डेढ़ दशक में दो लाख से ज्यादा किसानों के हताशा में आत्महत्याएं करने में हुई है। किसानी खेती करने वालों तथा अन्य

लघु उत्पादकों की इस तबाही को, जो इस देश की मेहतनकश आबादी का दो-तिहाई से ज्यादा हिस्सा हैं, नवउदारवादी व्यवस्था के तहत सामाजिक सेवाओं के अंधाधुंध बढ़ते निजीकरण ने और मारक बना दिया है।

लेकिन, यह तबाही इतने पर ही रुक नहीं जाती है। इस तबाही का दूसरा हथियार है, इन लघु उत्पादकों से सीधे-सीधे उत्पादन के उनके साधनों, जैसे खेती की जमीन, मछली पालन के तालाब, दस्तकारी के औजारों व बाजार का ही छीना जाना यानी मार्क्सवादी शब्दावली में, आदिम पूंजी संचय । यह इन लघु उत्पादकों की बढ़ती संख्या को उनके परंपरागत पेशों से उखाड़कर, रोजी-रोटी की तलाश में दूर-दूर की जगहों तथा शहरों की ओर धकेल रहा है। मेहनतकश जनता के आवयविक बुद्धिजीवी होने के नाते प्रभात पटनायक, ठीक इसी मुकाम से विकास के नवउदारवादी मॉडल की अपनी बुनियादी आलोचना प्रस्तुत करते हैं। इस क्रम में वह अपनी जीवन व विचार संगिनी प्रोफेसर उत्सा पटनायक के विशेष रूप से कृषि के अर्थशास्त्र के वर्ग-आधारित अध्ययन की सहायता से, नवउदारवाद के पैरोकारों से ही नहीं, नवउदारवादी विकास मॉडल के यांत्रिक मार्क्सवादी आलोचकों से भी असहमति जताते हैं, जो किसी न किसी रूप में लघु उत्पादकों के उजड़ने को, विकसित दुनिया में पूंजीवाद के विकास के इतिहास के उदाहरण से, विकास के लिए अपरिहार्य मानते हैं।

विकास के इस नवउदारवादी मॉडल की अपनी आलोचना में प्रभात पटनायक एक ओर तो विशेष रूप से भारत के संदर्भ में लगातार इसकी पड़ताल करते हैं कि इन उजड़े हुए